Sahitya Samhita (साहित्य संहिता)
Available at http://www.sahityasamhita.org/

ISSN 2454-2695
Volume 04 Issue 07
July 2018

तआरुफ़ अपना बकलम ख़ुद : न्यूयॉर्क

–स्वदेश राणा

"कहाँ से लाएगा कासिद बयाँ मेरा ज़ुबाँ मेरी?
मज़ा था तब जो सुनते मेरे मुँह से दास्ताँ मेरी!"

अदबी महफ़िलों में अज़ीम शायर इस किस्म के हर्फ़िया ऐलान भी करते हैं और खुद-बयानी में कसर नफ़सी भी दिखाते हैं। अपना नाम भी लेंगे तो किसी शहर से जोड़ कर गोया कि बज़ाते खुद उनकी कोई पहचान ही नहीं। फ़िराक गोरखपुरी, मजाज़ लखनवी, जोश मलीहाबादी, हफ़ीज़ जालंधरी, मजरूह सुलतानपुरी, हसरत जयपुरी, शकील बदायुनी, साहिर लुधियानवी!

मैं भी मुजस्सिम इंसान होता तो यकीनन अपने नाम के साथ न्यूयार्किया जोड़ कर कसर नफ़स अदीब हो जाता। लेकिन मैं तो एक जीता जागता शहर हूँ। सोता कम जागता ज़्यादा हूँ क्यों कि :

"अज़ल से ही मेरा सुबह से ये वादा है, कि जब वो उफ़क पे आएगी तो मैं सो जाऊँगा।"

यह सच है कि मिस्र, यूनान, रोम, चीन और हिंदुस्तान जैसी सैंकड़ों सदी पुरानी शहरी तहज़ीब मुझे विरासत में नहीं मिली। वहाँ के लोग जब महीन मलमल, मुलायम रेशम और गुदगुदे मख़मल के लिबास पहन कर घूमते थे तो मैं यहाँ फैली बर्फ़ की सफेद चादर ताने ठिठुरा करता था। वहाँ पर जब आलातरीन महल, दुमहले, क़िले, अटरिया बन रही थी तो मैं यहाँ बीस-बाईस हज़ार एकड़ की सलेटी मर्मरी चट्टान बना पिघलती बर्फ़ को दरिया, खाड़ी, समन्दर में बहते देख रहा था। वहाँ जब हुकूमत, सल्तनत और मिल्कियत के

ISSN 2454-2695
Volume 04 Issue 07
July 2018

नाम पर गदर, जंग हो रहे थे तो यहाँ मुझे बसाने वाले बन्जारे ज़मीन जायदाद के लफ़्ज़ों से बेखबर जहाँ तहाँ छावनी डालते फिरते थे।

फिर भी तारीख़ गवाह है कि खुले आम बाहें फैला कर दुनिया की हर तहज़ीब का ख़ैर मकदम करनें वाला मुझ जैसा दूसरा कोई शहर अब तक न हुआ। आज भी मेरी समुन्दरी सरहद पर खड़ी स्टैचू आफ़ लिबर्टी हाथ में बुलंद मशाल उठाए दिन रात तमाम दुनिया के लिए एक खुला दावतनामा सरे-आम दुहराती रहती है।

मुझे दे दो तुम अपने गुरबत के मारे
वो मज़लूम सारे
जो थक कर हैं हारे।
तूफ़ानों ने बेघर जिन्हें कर दिया है
जो लहरों के पटके
पड़े हैं किनारे।
जो सहमे हुए हैं
जो सिहरे हुए हैं
जो तरसे हुए हैं
कि आज़ाद कब हो?
उन्हें भेज दो पास मेरे
यहाँ पर
सुनहरी है फाटक
और मैं पास उसके
मशाले आज़ादी उठाए हुए हूँ।

इसे कोई साफ़ गोई समझे या बद गुमानी। हकीकत यही है कि आज की तारीख में मेरा सिक्का सिर चढ़

ISSN 2454-2695
Volume 04 Issue 07
July 2018

कर बोलता है। यहाँ मेरी छोटी सी दीवार गली को ज़रा सा जुकाम हो जाए तो तमाम तिजारती दुनिया के माल गुदाम बाज़ार छींकने लगते हैं।

जिस मुकाम पर मैं आज हूँ, वहाँ पहुँचने के लिए मैंने पिछली तीन-चार सदियाँ छलाँगें लगा कर पार की हैं। सत्रहवीं सदी में जब डच वेस्ट इंडिया कंपनी ने मुझे आदिवासी इंडियन लोगों से ख़रीदा तो मैं कौड़ियों के मोल बिका एक जज़ीरा था। अठारहवीं सदी में जब तेरह रियासतों ने मिल कर अमरीका को एक मुल्क बनाया तो मुझे रियासते-सल्तनत का ख़िताब मिला। उन्नीसवीं सदी में जब फ्रांस ने अमरीका को दोस्ती में स्टैचू आफ़ लिबर्टी के शानदार तोहफ़े से नवाज़ा तो मैं बन्दरगाहे-पनाह हो गया। जान रॉकफ़ैलर की दी हुई अठारह एकड़ ज़मीन पर बीसवीं सदी में जब युनाईटेड नेशन्ज़ का आलीशान हैड क्वार्टर बना तो मैं ज़मीरे जहान का हमसाया बन गया।

और फिर आई इक्कीसवीं सदी! पहले ही साल में कहर बरपा। ग्यारह सितंबर को दिन दहाड़े तबाही दो हवाई जहाज लेकर उड़ी, मेरे आसमां तक उठते जुड़वाँ तिजारती शहज़ादों से टकराई और चंद ही लम्हों में तीन हज़ार बेगुनाह जानें ले गई। मेरा अंजर पंजर हिल गया। मातम और सोगवारी का जो दाग मेरी रूह तक उतरा वो अभी तक कायम है। तीन साल होने को आए। मैं कुछ नहीं भूला, न भुलाना चाहता हूँ। जब तक यकीन न हो जाएं कि मेरा तीया पांचा चाहने वालों की तो क्या, उनको कुमुक और पनाह देने वालों की भी खैर नहीं। मुश्किल यह है कि इस मामले में वाशिंग्टन और मेरा नज़रिया कुछ फ़र्क है। मुल्क की राजधानी है न वाशिंग्टन! सिर्फ दो सियासी जुबानें समझता है : डैमोक्रेटिक और रिपब्लिक।

और मैं? दुनिया की हर जुबान सुनता, समझता हूँ। कुछ ही दिन हुए मेट्रोपोलिटन म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट की साफ़ सुथरी सीढ़ियों पर बैठे तीन न्यूयार्किये बतिया रहे थे। बोल तो तीनों अँग्रेज़ी ही रहे थे। लेकिन सुनने वाले को स्पैनिश अरबी और सिंहल जुबानों की बातचीत लग रही थी।

"अमरीका और रूस नें अपनी आपसी कहा सुनी भुला दी, यह तो अच्छा ही हुआ। बस अब हमें अमरीका

ISSN 2454-2695
Volume 04 Issue 07
July 2018

पहले की तरह आसानी से माली मदद नहीं देता।" मैक्सिको का हुअरिज़ कह रहा था।

"उसका एक आसान तरीका है अभी," सीरिया के हुसैन ने कहा।

"अपने कुछ गैर मुल्की लफंगों से कह कर इनके किसी शहर में अचानक गुंडा गर्दी करवा दो। यह अपना पूरा फ़ौजी अमला फैला लेकर तुम्हारे मुल्क को तबाह कर देंगे। उसके बाद? इनसे ही क्या सारी दुनिया से माली इख़लाक़ी मदद मिल जाएगी।"

श्रीलंका का प्रियरत्ने कुछ देर तक आँखें मूँद सोचता रहा, फिर सिर हिला कर बोला।

"तुम्हारी बात है तो सही। लेकिन इनके फ़ौजी हमला करने के बाद अगर हमारा मुल्क जीत गया तो?"

जिन आम तबाही के ख़ास हथियारों का इस्तेमाल रोकने के लिए अमरीका ने इराक पर हाई-टैक फ़ौजी हमला किया था, वो आज तक वहाँ से बरामद नहीं हुए। इस बात को लेकर अमरीकी खुफिया जानकारी देने वाले अफ़सरान को गलत-बयानी के इल्ज़ाम में काफी जवाब तलबी देनी पड़ रही है। चौबीसों घंटे सनसनी की खोज में मुस्तैद मीडिया की खूब चाँदी है। वैसे भी नए प्रेसिडेंट के चुनाव का साल है। आए दिन प्रेसिड़ेंट बुश और उम्मीदवार कैरी को लेकर चर्चा होती है। मैं अगर इस बहस में पड़ गया तो फिर अपनी बात क्या करूँगा? मुझे तो खुद-बयानी का मौका कम ही मिलता है। अब मिला भी है तो ऐसे माहौल में जहाँ हर ऐरा गैरा नत्थू खैरा अपनी जिन्दगी के चिथड़ों को उधेड़ रफ़ू करके तुरंत शौहरत के छपे हुए पन्नों की गुदड़ी बनाने के चक्कर में हैं।

एक बाज़ार सा लगा हुआ है कलम के हुनर का! कमोबेश फ़ीस लेकर पेशावर ज़िन्दग़ीनामा लिखने वाले इन्टरनैट पर बाकायदा वैबसाईट के सजे सजाए खोमचे लिए खड़े हैं। मुनासिब कमीशन काट कर अदबी एजेंट ज़िन्दगीनामों को आम से ख़ास बना देने का वादा करते हैं और उँचे दामों में बिकवाने की होड़ लगाए हैं। कोलम्बिया और न्यूयार्क युनिवर्सिटी जैसी आला तालीम की जगहें अब ज़िंदगीनामा लिखने की ट्रेनिंग देने के लिए वर्कशाप चलाना अपनें लिए ज़रूरी समझती है।

जो बेनाम हैं उन्हें अपनी यादें बेचनें के लिए खरीददार चाहिए। जो नाम वाले हैं उनको पेशगी देकर किताब

ISSN 2454-2695
Volume 04 Issue 07
July 2018

घर ज़िंदगी नामा लिखने की दावत दे रहे हैं। हाल ही में तगड़ी पेशगी लेकर बिल क्लिंटन ने पूरे नौ सौ सत्तावन पन्नों को खुद ही लिखकर "मेरी ज़िन्दगी" का उन्वान दे दिया। छपने से पहले हाथों हाथ बिकी किताब जब बाज़ार में उतरी तो लिखने वाले को आड़े हाथ लेने वालों की कमी न रही।

"कैम्प से लिखा हुआ किसी बच्चे का बहुत लंबा खत है, कहां गया? किसे मिला? क्या खाया?" कह कर ब्लूमबर्ग रेडिओ ने टी.वी. के मोज़िज़ ख़बरनवीस डॉन रादर से मुत्तफ़िक होने से इन्कार कर दिया। डॉन रादर ने "मेरी जिन्दगी" का मुवाकिला प्रेसिडेंट यूलिसस के एक हज़ार सफ़ों में लिखे तारीख़ी ज़िन्दगीनामे से किया था जो इतना बढ़िया था कि लोग अभी तक समझते है मार्कटवेन ने लिखा होगा।

"इस बचकाना, वाहयात और खुद परस्त किताब ने अमरीकी प्रेसिडेंसी का मलीदा कर दिया है," यह कहने वाली न्यूयार्क टाइम्ज़ की जानी पहचानी मिचिको काकुनानी नें अपनी शाहकार कलम से बड़ों बड़ों को पानी पिलाया है। लेकिन बिल क्लिंटन असली मायनों में सरवाईवर हैं। हँसते, मुस्कराते, ओठ दबाते, अपने खूबसूरत चेहरे और सफ़ेद बालों के ताज को टी.वी. के हर चैनल पर दिखाते हुए फ़रयाते हैं कि : "अक्सर ज़िन्दगीनामे उबा देने वाले और खुदपरस्त होते हैं। उम्मीद है कि "मेरी ज़िन्दगी" दिलकश और खुदपरस्त होगी।"

यही सब देखने सुनने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अपना नगर नामा लिखूँ तो ऐसी जुबाँ में जो न क्लिंटन को आती हो, न डॉन रादर को, न ब्लूमबर्ग को और न मिज़ काकुतानी को। कोई ऐसी जुबान जिसमें हज़ार पन्नों की बात एकाध जुमले में हो जाए।

उस दिन लिंकन सैंटर के ऐलिस टुली हाल में जो जुबाँ सुनी, वह मुझे बड़ी प्यारी लगी। ग़ालिबनामा का शानदार इजलास करनेवाले भारतीय विद्या भवन के डायरेक्टर डॉक्टर जयरमन, ग़ालिब के ख़तूत अपने मख़सूस अंदाज़ में पढ़ने वाले सलीम आरिफ़, मौके की अहमियत बताते पद्मभूषण डॉक्टर गोपी चंद नारंग और बार बार दर्शकों के इसरार के बावजूद दो से चार शब्द कहने में कंजूसी दिखाते पद्मभूषण गुलज़ार।

ISSN 2454-2695
Volume 04 Issue 07
July 2018

जुबान सभी ने वही बोली, अंदाज़ सब का अलग रहा। मैं तो तभी फ़िदा हो गया जब डॉक्टर नारंग ने मियां असदुद्दीन गालिब के अंग्रेज सल्तनत को खरी खोटी सुनाने का एक छोटा सा बातहज़ीब वाक्या सुनाया।

"मुसलमान हो क्या?" गालिब को जेल ले जाते हुए एक अंग्रेज सिपाही ने पूछा।

"हां, मगर आधा। शराब पीता हूँ। सूअर मुँह नहीं लगता।" यह था गालिब का जवाब!

मैं शायर नहीं तो क्या हुआ? काफ़िया ठीक बैठे न बैठे, बहर मुताबिक़े-असूल हो न हो, अदबी दुनिया में अपना नगरनामा एक मख़सूस अंदाज़ में कहने की ज़बरदस्त तलब है मुझे। हिमाकत हो या नासमझी, कहूँगा ज़रूर।

जज़ीरे साहिलों को देख कर
इतराया करते हैं
इन्हें देखो कि कितनी दूर तक
बाहें पसारे हैं!
मगर दो साहिलों के बीच
मौजों ही का रिश्ता है
जो टकराती तो हैं दोनों से
लेकिन मिल नहीं पाती।
हमें देखो कि दोनों साहिलों से
दूर रहते हैं
मगर साहिल भी अपने
और मौजें भी हमारी हैं!

हड़सन दरिया, न्यूयार्क खाड़ी, ईस्ट दरिया के साहिलों और अटलांटिक समंदर की लहरों से घिरा मैं भी एक ऐसा ही जज़ीरा हूँ।

Sahitya Samhita (साहित्य संहिता)
Available at http://www.sahityasamhita.org/
ISSN 2454-2695
Volume 04 Issue 07
July 2018

अब तक लाखों सैलानी शाम के धुँधलके में यक-ब-यक जगमगाती मेरी बेमिसाल स्काईलाइन को देखकर दुबारा यहाँ आने का इरादा कर चुके हैं। टाइम्स स्क्वेयर की चौंधियाती रोशनी में हर बरस यहाँ लाखों दोस्त, अजनबी, घरवाले गले मिल कर शैम्पेन छलकाते हुए रात के ठीक बारह बजे नए साल की ख़ुशामदीद का नाचता गाता जश्न मनाते हैं। मौसीकी हो या रक्स, ट्राइबल हो या मॉडर्न, सैंकड़ों साज़िदों के साथ हो या अकेले, सेंट्रल पार्क में बिना टिकट ख़रीदे नसीब हो जाए या महीनों पहिले बुकिंग करवा कर कारनेगी हॉल की मख़मली कुर्सियों पर बैठे हुए, यहाँ नित नए अदाकार भी दिखते हैं और लुत्फ़अंदोज़ होने वाले भी।

टी.वी. के मारों की इस दुनिया में मेरा ऑन और ऑफ ब्राडवे ज़िंदा अदाकारी का रिवाल्विंग डोर हो गया है। वहाँ खेले जाने वाले नाटक और ड्रामे देखना, उन चार मसरूफ़ियात में एक है जिन पर मेरा ख़ास ठप्पा लग चुका है। बाकी तीन भी गिना देता हूँ। घंटों इंतज़ार करने के बाद दो तीन मिनट के लिए बेलमांट रेस ट्रैक पर शर्तें लगाकर सालाना घुड़दौड़ी देखना। एम्पाईर स्टेट की इमारत के कगूरे से खिली धूप या अंगड़ाई लेती शाम के वक्त मुझे एक ही नज़र में दूरबीन लगाकर सरापा देखना। और ग्रैंड सेन्ट्रल ट्रेन स्टेशन की मूल भुलैया में या पोर्ट आथॅरिटी के बस टर्मिनल में पहली बार उतरने वाले किसी मेहमान को तलाश करने की कोशिश में खुद खो जाना। वज़न घटाना और हैमबर्गर खाना मेरी शहरी आदत है जो नए मेहमान कुछ दिन टाल देते हैं। फिर कोई न कोई उन्हें समझा देता है कि वज़न घटाने और दौलत बढ़ाने पर कोई रोक लगाना बेमाइना है।

वैसे हर नए आने वाले को यहाँ एक न एक दिन कोई हम-ज़ुबान, हम-वतन, हम-निवाला, हम-प्याला मिल ही जाता है। आने वाला और कोई तोहफ़ा साथ लाए न लाए, मुठ्ठी भर खुशबू अपनी तहज़ीब की लेकर ही आता है। मेरे म्यूज़ियम तमाम दुनिया के बेशकीमती तहज़ीबी तोहफ़े फ़ख्र से सहेज कर बटोरते हैं और निहायत इहतियात से करीने वार सजा देते हैं जैसे कि हर मेहमान के लिए एक ख़ास कमरा। और मुझे अभी तक कांच के उन मुट्ठी भर मनकों की तलाश है जिन्हें देकर मैं चार सौ से बीस साल पहले खरीदा गया था।

ISSN 2454-2695
Volume 04 Issue 07
July 2018

क्या तारीख़ी इत्तफ़ाक है न! मुझे बेचने वाले के अमेरिकन इंडियन! मुझे खरीदने वाली भी डच वेस्ट इंडिया कम्पनी! और वो कोलम्बस? वो भी तो इंडिया को ही खोजता पहुँचा था न यहाँ? जिसकी तलाश में निकला था, वहीं जा पहुँचता तो मेरा क्या होता! यह सोचता हूँ तो लगता है कि तलाश अब तक जारी है। किसी न किसी लिहाज़े आज भी अमरीकी और हिंदोस्तानी एक दूसरे को खोज रहे हैं, पहिचान रहे हैं और फैसला नहीं कर पा रहे कि कब हम कदम हो लें।